

२९० कलश है।

एको देवस्त्रिभुवन-गुरुर्नष्ट-कर्माष्टकार्थः,
सद्बोधस्थं भुवनमखिलं तद्गतं वस्तुजालम्।
आरातीये भगवति जिने नैव बन्धो न मोक्षः,
तस्मिन् काचिन्न भवति पुनर्मूर्च्छना चेतना च॥२९०॥

अरिहन्त भगवान को इच्छा नहीं होती, इसे सिद्ध करने के लिये अधिक बात स्पष्ट करते हैं। भगवान बोलते हैं, ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह वास्तव में उन्हें इच्छा नहीं होती। इच्छा बिना परमात्मा अरिहन्त को वाणी निकलती है, इसलिए उन्हें बन्ध का कारण नहीं है।

श्लोकार्थ : तीन लोक के जो गुरु हैं,... सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा तीन लोक के गुरु हैं। तीन लोक को जानते हैं, इसलिए उसके गुरुरूप से कहने में आते हैं। अथवा उत्तम में उत्तम पुरुष जो इन्द्र आदि और गणधरादि हैं, उनके वे गुरु हैं। इसलिए उन्हें तीन लोक के गुरु कहा जाता है। **चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है...** चार कर्म अर्थात् वाणीवाले लेना है न? अकेले सिद्ध नहीं लेना। **चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है...** चार कर्म जिन्हें बाकी हैं। आठ कर्मों में। **और समस्त लोक तथा उसमें स्थित पदार्थसमूह जिनके सदज्ञान में स्थित हैं,...** लो! तीन काल और तीन लोक जिनके सदज्ञान में स्थित हैं, लो! अर्थात् कि उनका ज्ञान पूर्ण वर्तता है। वापस ऐसा कहते हैं कि **पदार्थसमूह जिनके सदज्ञान में स्थित हैं,...** इनके ज्ञान में स्थित हैं। इसका अर्थ कि जितने तीन काल -तीन लोक हैं, वह सब भगवान के ज्ञान में मानो वर्तता है। एक क्षण में ज्ञान में जाने, ऐसा जो अरिहन्त पद है।

वे (जिन भगवान) एक ही देव हैं। ऐसे हों, उन्हें देव कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्यो ने कल्पित किये हुए देव, वे देव नहीं हो सकते। जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में मानो वर्तते हैं और इच्छा बिना जिन्हें वाणी होती है, वे एक ही देव हैं। इसके अतिरिक्त जगत में कोई सच्चा देव नहीं है। **उन निकट**

(साक्षात्) जिन भगवान में... साक्षात् जिनभगवान के विषय में न तो बन्ध है, न मोक्ष,... बन्ध भी नहीं है और मोक्ष भी नहीं है। भावमोक्ष तो हो गया है। बाह्य मोक्ष अभी चार कर्म का बाकी है। इसलिए मोक्ष भी अभी नहीं और बन्ध भी नहीं। भगवान को बन्ध भी नहीं और अभी पूर्ण मोक्ष भी नहीं। चार कर्म का जो अभाव होकर द्रव्यमोक्ष होना चाहिए, वह नहीं है। भावमोक्ष है।

तथा उनमें न तो कोई मूर्छा है... अज्ञानदशा। जानने का कुछ बाकी हो, ऐसा उसमें है नहीं। न कोई चेतन... अर्थात् जानना कुछ बाकी है, ऐसा है नहीं। पूर्ण आश्रय द्रव्य का प्रगट हो गया है। ऐसे वे भगवान एक ही देव हैं। उनकी वाणी इच्छा बिना निकलती है। उन्हें अभिलाषापूर्वक वाणी होती नहीं। उन्हें बन्ध होता नहीं। छद्मस्थ प्राणी को वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है परन्तु उसे नीचे इच्छापूर्वक होती है, इसलिए वह बन्ध का कारण है। नीचे बन्ध का कारण है। उन्हें बन्ध का कारण नहीं। दशा पूर्ण हो गयी है। २९० कहा।

मुमुक्षु : चेतना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतना कहा न। जानने का बाकी नहीं अथवा आश्रय करना बाकी नहीं। पूर्ण आश्रय हो गया। चेतना अर्थात् अन्दर एकाग्र होना अब बाकी नहीं है। प्रश्न तो करे न! कहो, समझ में आया ? नीचे स्पष्टीकरण किया है। (**क्योंकि द्रव्यसामान्य का पूर्ण आश्रय है**)। है न ? अब आश्रय करना बाकी नहीं है। यहाँ तो नहीं चेतना, ऐसा कहना है। नहीं चेतना में पूर्ण चेतना है, ऐसा होगा ? नहीं चेतना अर्थात् अब कुछ चेतना, आश्रय करना बाकी नहीं है। वह तो जैसा हो, वैसा होवे न। २९०।

देखो! ऐसे अरिहन्त भगवान को ऐसी दशा होती है। उन्हें पूर्व के कर्म के कारण से वाणी निकलती है परन्तु उन्हें इच्छा, राग और अभिलाषापूर्वक वाणी नहीं होती। दिव्यध्वनि निकलती है। सवेरे, दोपहर, सायंकाल, रात्रि (में) इच्छा बिना वाणी निकलती है। इच्छा नहीं है। वे तो वीतराग हैं, पूर्ण हैं।

श्लोक-२९१

(मंदाक्रांता)

न ह्येतस्मिन् भगवति जिने धर्म-कर्म-प्रपञ्चो,
 रागाभावा-दतुल-महिमा राजते वीतरागः ।
 एषः श्रीमान् स्वसुखनिरतः सिद्धिसीमन्तिनीशो,
 ज्ञानज्योतिश्छुरितभुवनाभोगभागः समन्तात् ॥२९१॥

(वीरछन्द)

सचमुच इन जिन भगवन्तों में धर्म-कर्म का नहीं प्रपञ्च ।
 वीतरागमय सदा विराजित अतः अतुल हैं महिमावन्त ॥
 निज सुख में हैं लीन सदा वे, शोभावन्त श्री भगवान ।
 ज्ञान-ज्योति से पूर्ण लोक में छाए मुक्ति-वधू के नाथ ॥२९१॥

[श्लोकार्थः —] इन जिन भगवान में वास्तव में धर्म और कर्म का प्रपञ्च नहीं है (अर्थात् साधकदशा में जो शुद्धि और अशुद्धि के भेद-प्रभेद वर्तते हैं, वे जिन भगवान में नहीं हैं); राग के अभाव के कारण अतुल-महिमावन्त ऐसे वे (भगवान) वीतरागरूप से विराजते हैं । वे श्रीमान् (शोभावन्त भगवान) निजसुख में लीन हैं, मुक्तिरूपी रमणी के नाथ हैं और ज्ञानज्योति द्वारा उन्होंने लोक के विस्तार को सर्वतः छा दिया है ॥२९१॥

श्लोक - २९१ पर प्रवचन

श्लोक २९१

न ह्येतस्मिन् भगवति जिने धर्म-कर्म-प्रपञ्चो,
 रागाभावा-दतुल-महिमा राजते वीतरागः ।
 एषः श्रीमान् स्वसुखनिरतः सिद्धिसीमन्तिनीशो,
 ज्ञानज्योतिश्छुरितभुवनाभोगभागः समन्तात् ॥२९१॥

श्लोकार्थ : इन जिन भगवान में... परमेश्वर जहाँ वीतरागदशा पूर्ण हो गयी, जिन्हें

कुछ राग का अंश और इच्छा है नहीं, उन भगवान को वास्तव में धर्म और कर्म का प्रपंच नहीं है... अभी धर्म करना अर्थात् शुद्धि और अशुद्धि का भाग नहीं है। (साधकदशा में जो शुद्धि और अशुद्धि के भेद-प्रभेद वर्तते हैं, वे जिन भगवान में नहीं हैं);... पूर्ण दशा वीतराग हुई, पश्चात् उन्हें शुद्धि और अशुद्धि दो भेद है नहीं। शरीर एक बाकी है। चार कर्म बाकी हैं। समझ में आया ? परन्तु राग है नहीं तथा शुद्धि और अशुद्धि के प्रकार भी (नहीं है)। पूर्ण शुद्धि हो गयी, इसलिए इसमें दो भेद नहीं हैं।

राग के अभाव के कारण अतुल-महिमावन्त... आहाहा ! उनकी आनन्ददशा और केवलज्ञान दशा, वह तो अतुल महिमावाली है। ऐसी ही आत्मा की शक्ति है कि इस रूप परिणमे और हो सकते हैं। प्रत्येक आत्मा ऐसी शक्तिवाला है। समझ में आया ? कहते हैं, राग के अभाव के कारण अतुल-महिमावन्त... जिनकी महिमा को कोई उपमा (नहीं है)। किसी की उपमा / तुलना नहीं की जा सकती। ऐसे वे (भगवान) वीतरागरूप से विराजते हैं। वे श्रीमान् (शोभावन्त भगवान)... देखो, वे श्रीमान् हैं। शोभावन्त भगवान। श्री अर्थात् शोभा। निजसुख में लीन हैं,... परमात्मा तो अपने अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हैं। यही आत्मा परमात्मा होता है अर्थात् आत्मा आनन्द में ही लीन रहता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अपना आनन्दस्वभाव अभी भी अनन्त आनन्द से विराजमान आत्मा है। उसमें एकाग्र होने से व्यक्तरूप प्रगट अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, ऐसे परमात्मा अरिहन्त इस आनन्द में वे लीन हैं। किसी का भला करना या बुरा करना, ऐसा उनमें है नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कहते हैं न कि भाई ! भगवान अवतार लेते हैं, राक्षसों को मारते हैं और भक्तों का कष्ट मिटाते हैं। ऐसे भगवान नहीं हो सकते। वे भगवान ही नहीं हैं। समझ में आया ? स्वयं को अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, वीतरागता प्रगट हुई है, उसमें वे लीन हैं।

मुक्तिरूपी रमणी के नाथ हैं... मोक्ष हुआ है न, वे केवलज्ञानी ? अपनी मुक्तदशा के नाथ-स्वामी हैं। पूर्ण पवित्रता प्रगट हुई, उसके वे मालिक और स्वामी हैं। वे कोई जगत के स्वामी नहीं हैं। अपने को पूर्ण आनन्ददशा, पूर्ण-ज्ञान-शान्तिदशा प्रगट हुई है, उसके वे नाथ हैं। और ज्ञानज्योति द्वारा उन्होंने लोक के विस्तार को सर्वतः छा दिया है। ज्ञानज्योति द्वारा जिन्होंने लोकालोक के विस्तार को जान लिया है। पूरी दुनिया मानो ज्ञान से छा गयी है। अर्थात् कि पूरी दुनिया—लोकालोक जिनके ज्ञान में वर्तता है। आहाहा ! ऐसा परमात्मा का, अरिहन्त का परिणामपूर्वक बोलने बिना का स्वरूप है। समझ में आया ?

गाथा-१७५

ठाणणिसेज्जविहारा ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो ।
 तम्हा ण होइ बंधो साक्खट्टं मोहणीयस्स ॥१७५॥
 स्थाननिषण्णविहारा ईहापूर्वं न भवन्ति केवलिनः ।
 तस्मान्न भवति बन्धः साक्षार्थं मोहनीयस्य ॥१७५॥

केवलिभट्टारकस्यामनस्कत्वप्रद्योतनमेतत् । भगवतः परमार्हन्त्यलक्ष्मीविराजमानस्य केवलिनः परमवीतरागसर्वज्ञस्य ईहापूर्वकं न किमपि वर्तनं; अतः स भगवान् न चेहते मनःप्रवृत्तेरभावात्; अमनस्काः केवलिनः इति वचनाद्वा न तिष्ठति नोपविशति न चेहापूर्वं श्रीविहारादिकं करोति । ततस्तस्य तीर्थकरपरमदेवस्य द्रव्यभावात्मकचतुर्विधबन्धो न भवति । स च बन्धः पुनः किमर्थं जातः कस्य सम्बन्धश्च? मोहनीयकर्मविलासविजृम्भितः, अक्षार्थमिन्द्रियार्थं तेन सह यः वर्तत इति साक्षार्थं मोहनीयस्य वशगतानां साक्षार्थप्रयोजनानां सन्सारिणामेव बन्ध इति ।

तथा चोक्तं श्री प्रवचनसारे -

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मवदेसो य णियदयो तेसिं ।
 अरहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं ॥

अभिलाषयुक्त विहार, आसन, स्थान जिनवर को नहीं ।

निर्बन्ध इससे, बन्ध करता मोह-वश साक्षार्थ ही ॥१७५॥

अन्वयार्थ : [केवलिनः] केवली को [स्थाननिषण्णविहाराः] खड़े रहना, बैठना और विहार [ईहापूर्वं] इच्छापूर्वक [न भवन्ति] नहीं होते, [तस्मात्] इसलिए [बंध न भवति] उन्हें बन्ध नहीं है; [मोहनीयस्य] मोहनीयवश जीव को [साक्षार्थम्] इन्द्रियविषयसहितरूप से बन्ध होता है ।

टीका : यह, केवली भट्टारक को मनरहितपने का प्रकाशन है (अर्थात् यहाँ केवली भगवान का मनरहितपना दर्शाया है)।

अरहन्तयोग्य परम लक्ष्मी से विराजमान, परमवीतराग सर्वज्ञ केवली भगवान को इच्छापूर्वक कोई भी वर्तन नहीं होता; इसलिए वे भगवान (कुछ) चाहते नहीं हैं, क्योंकि मनप्रवृत्ति का अभाव है; अथवा, वे इच्छापूर्वक खड़े नहीं रहते, बैठते नहीं हैं अथवा श्री विहारादिक नहीं करते, क्योंकि “ अमनस्काः केवलिनः (केवली मनरहित हैं) ” ऐसा शास्त्र का वचन है। इसलिए उन तीर्थकर-परमदेव को द्रव्यभावस्वरूप चतुर्विध बन्ध (प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध) नहीं होता।

और, वह बन्ध (१) किस कारण से होता है तथा (२) किसे होता है ? (१) बन्ध मोहनीयकर्म के विलास से उत्पन्न होता है। (२) ‘अक्षार्थ’ अर्थात् इन्द्रियार्थ (-इन्द्रिय-विषय); अक्षार्थ सहित हो, वह ‘साक्षार्थ;’ मोहनीय के वश हुए, साक्षार्थ-प्रयोजन (इन्द्रियविषयरूप प्रयोजनवाले) संसारियों को ही बन्ध होता है।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (४४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

उन अर्हन्तों को स्वकाल में आसन, उठना और विहार।

दिव्यध्वनि भी स्वाभाविक, ज्यों महिलाओं में मायाचार ॥

“ [गाथार्थ:—] उन अरहन्तभगवन्तों को उस काल खड़े रहना, बैठना, विहार और धर्मोपदेश स्त्रियों के मायाचार की भाँति, स्वाभाविक ही-प्रयत्न बिना ही-होता है। ”

गाथा - १७५ पर प्रवचन

१७५ गाथा।

ठाणणसेज्जविहारा ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।

तम्हा ण होइ बंधो साक्खट्टं मोहणीयस्स ॥१७५॥

अभिलाषयुक्त विहार, आसन, स्थान जिनवर को नहीं।

निर्बन्ध इससे, बन्ध करता मोह-वश साक्षार्थ ही ॥१७५ ॥

अर्थ किया है। निहार शब्द पड़ा है। टीका में भी निहार है।

केवली भट्टारक सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट हुए, ऐसे तीर्थकर अथवा केवली मनरहितपने का प्रकाशन है... लो! उन्हें मन नहीं होता। भाव मन है नहीं। द्रव्य मन तो जड़ है। यह, केवली भट्टारक को मनरहितपने का प्रकाशन है (अर्थात् यहाँ केवली भगवान का मनरहितपना दर्शाया है)।

अरहन्तयोग्य परम लक्ष्मी से विराजमान,... अरहन्तयोग्य, अरहन्तयोग्य। उनके योग्य परमलक्षणी अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, वीतरागता ऐसी उसमें उनके पास वह है। यह धूल की लक्ष्मी नहीं। समझ में आया? यह धूल की लक्ष्मी तो आत्मा के पास कहाँ है? यह तो भिन्न है। यह तो मूढ़ मानता है कि मैं लक्ष्मीवाला हूँ। पैसा-बैसा धूल तो बाहर है। इसके पास कहाँ आये? इसमें घुस गये हैं? परन्तु पैसा मेरा, लक्ष्मी मेरी, यह जड़ का स्वामी मूढ़ होता है। आहाहा! इस लक्ष्मी का स्वामी, वह भगवान है। समझ में आया?

अरहन्तयोग्य परम लक्ष्मी... ऐसा कहा है न? परमवीतराग सर्वज्ञ केवली भगवान को... परम वीतराग सर्वज्ञ। इच्छारहित हो गये, वीतराग और सर्वज्ञ हैं। ऐसे केवली भगवान को इच्छापूर्वक कोई भी वर्तन नहीं होता;... इच्छापूर्वक उन्हें कुछ भी वर्तन नहीं होता। आहाहा! इसलिए वे भगवान (कुछ) चाहते नहीं हैं,... उन्हें हिलना, चलना, बोलना, विहार करना, यह कोई इच्छा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। पहले वचन का डाला था। अब सब डाला।

क्योंकि मनप्रवृत्ति का अभाव है;... भगवान को मन की प्रवृत्ति ही नहीं है। आहाहा! भगवान तो केवलज्ञानमय मात्र स्वरूप है। आहाहा! देव का स्वरूप भी इसने बराबर जाना नहीं है। देव का वास्तविक स्वरूप जाने तो इस आत्मा के साथ मिलान करे कि कैसा और इस प्रकार का ही मैं हूँ, तो उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहे। परन्तु दो की व्याख्या की भी खबर नहीं होती। समझ में आया? सभी देव समान। सर्वत्र चावल रखना, सबको मानना। मिथ्यात्वभ्रम अज्ञान है, कहते हैं। समझ में आया? जयनारायण

करो सबको। हनुमान और शिकोतरी और अम्बाजी को। मूढ़ है, कहते हैं। उसे भान नहीं कि आत्मा क्या है और उसकी कीमत कितनी है। आता है न, देखो न! यह देह के नाम से कितने ही? कितने ही देव के नाम का शनिवार करे, कोई सोमवार करे, कोई रविवार करे। जैन में जन्मे परन्तु मूढ़ बड़े बैल जैसे हैं। समझ में आया? कुछ भान नहीं होता, भान। देव, ऐसे देव को छोड़कर ऐसे देव को मानना, वह मूढ़ है, कहते हैं।

वे इच्छापूर्वक खड़े नहीं रहते,... देखो! खड़े रहे, ऐसे भगवान, शरीर। इच्छापूर्वक खड़े नहीं रहते। वह तो देह की क्रिया की उदय की ऐसी स्थिति है तो खड़े रह जाते हैं। भगवान इच्छापूर्वक खड़े नहीं रहते। बैठते नहीं हैं... इच्छापूर्वक। आसन ऐसा हो जाए। वह इच्छापूर्वक नहीं होता। सभा में समवसरण में भगवान विराजते हैं। विहार करके ऐसे पालथी लगाकर बैठें, वह इच्छापूर्वक नहीं है। जड़ के उदय का काल है। तो तदनुसार क्रिया हो जाती है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आहार की क्रिया भी ऐसे हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार की क्रिया ऐसे नहीं होती। यह ठीक कहते हैं। आहार की क्रिया भी भगवान को ऐसे हो जाए, ऐसा कहते हैं। देखो! प्रश्न तो होवे न। आहार में तो इच्छा बिना आहार लेने की वृत्ति होती ही नहीं। और यह आहार लेना, उसमें पवन की प्रेरणा बिना आहार अन्दर आता ही नहीं। कहो, समझ में आया? भगवान की... यहाँ अभी देखो न, यह पानी और आहार ले न? हवा खींचे तब वह पानी और आहार अन्दर आता है। ऐसा का ऐसा ग्रास अन्दर नहीं आ जाता। ऐसी पवन की प्रवृत्ति भगवान को नहीं होती। इसलिए भगवान को आहार और पानी नहीं होता। इनके भाई का है न। वह भी पहले था न? कहो, समझ में आया?

भगवान अरिहन्त परमेश्वर, उनके शरीर में रोग नहीं होता, उन्हें आहार-पानी नहीं होता, उन्हें निद्रा नहीं होती, उन्हें इच्छापूर्वक वाणी नहीं होती। फिर प्रश्न कहाँ रहा? वाणी है तो भी इच्छा नहीं है तथा आहार हो और इच्छा न हो, ऐसा होता ही नहीं। इच्छा बिना आहार लेने की वृत्ति नहीं होती। आहार लेने जाऊँ, आहार करना और पेट में डालना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उदय की दशा है इसलिए। परन्तु उदय की जरा अवस्था

है.... आया परन्तु है नहीं आहार। उनका प्रश्न ठीक है। ग्यारह परीषह कहे हैं न? असाता के उदय से। उदय का भाग है न... ऐसी क्षुधा नहीं होती कि उसके आहार लेने की वृत्ति हो या आहार आवे। वे देव के स्वरूप को नहीं जानते। कहो, समझ में आया? भगवान को आहार सिद्ध किया, भगवान के शरीर को रोग सिद्ध किया, वे भगवान को नहीं जानते। उस उल्टे स्वरूप से जीवों को चढ़ा दिया।

मुमुक्षु : भगवान को औषध होती है या नहीं, औषध ?

पूज्य गुरुदेवश्री : औषध-फौषध कैसा ? रोग होवे तो औषध होवे न ? आहाहा ! समझ में आया ? 'गौशाले मारी लेश्या' आता है न ? छह महीने तक खूनी दस्त रही। बिल्कुल झूठ बात है। सब कल्पित है। यह सब कल्पित बात है। शास्त्र की, भगवान की वाणी नहीं है। आहाहा ! भारी कठिन काम, भाई ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : कल्पित करके श्रद्धा का विरोध करना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पित करके लोगों को अपना सम्प्रदाय चलाना था। कल्पित शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कल्पित और सम्प्रदाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री को मुक्ति सिद्ध की, सबको मुक्ति सिद्ध की। सब सम्प्रदायवाले अपने साथ चले।

मुमुक्षु : भगवान भी औषधि लेते हैं तो अपने को क्या बाधा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान भी स्त्री के तो अपने भी स्त्री भगवान हो सकती है, ऐसा कहकर सबको अच्छा लगाया।

एक थे, नाम भूल गये। अहमदाबाद के नहीं ? दलाल। हरिभाई, मन्दिरमार्गी। हरिभाई दलाल था। बहुत जबरदस्त। अहमदाबाद का था। फिर यह सब नहीं पैसेवाले ? रघुभाई जी। उन सबको लगावे ऐसा। यहाँ थे न... कैसे ? भोगीभाई। भोगीभाई और नानुभाई। भोगीभाई। अहमदाबाद के बड़े गृहस्थ। पचास लाख। वे यहाँ रहे थे तो प्रति दिन सुनने आते। नजदीक थे न। यहाँ गाँव में कहाँ से ऐसा ? पश्चात् हरिभाई उनके साथ देखने आवे न ! पन्द्रह दिन रहे और सुना - यह बात तो दूसरी कहते हैं। स्त्री को मोक्ष सिद्ध किया,

इसका अर्थ ? सबको इकट्ठा करना । बात सत्य लगती है । परन्तु होशियार व्यक्ति था, हों ! गुजर गया । १९९२ में आया था । हरिभाई अहमदाबाद का मन्दिरमार्गी । मार्ग अलग है, बापू ! समझ में आया ? जिन्हें इच्छा भी मर गयी । अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, उन्हें इच्छापूर्वक वाणी कैसी, उन्हें आहार कैसा, पानी कैसा और रोग कैसा और औषध कैसी ? ऐसे देव के स्वरूप को नहीं जानते ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब वार्ता । यह तो ठीक । इसका कुछ नहीं । अपने तो उन्हें चेला-बेला होते नहीं । यह बात लो न ! यह अभी चलता है वह । समझ में आया ?

भगवान को आहार नहीं, पानी नहीं, रोग नहीं । अनन्त आनन्द का जहाँ अनुभव है, उन्हें फिर आहार कैसा ? आहाहा ! उन्हें पानी कैसा ? सब वस्तु का स्वरूप तत्त्व से विरुद्ध कर डाला है । समझ में आया ? ऐई ! जाधवजीभाई ! तेरा दादा उसमें था । वह नहीं थी, बात ही नहीं थी । धर्म की नहीं थी । दया, दान, व्रत पाले, उसे धर्म होता है, यह बात भी झूठ और यह बात भी झूठ । सब झूठ बात है । धर्म, वह क्या है, इसकी उसे खबर नहीं है । देव किसे कहना, उसकी खबर नहीं है ; गुरु किसे कहना, उसकी खबर नहीं है । और शास्त्र किसे कहना, उसकी भी खबर नहीं है । ऐसा है । भारी कठिन काम । भगवान के नाम से पुस्तक चढ़ा दी न । बेचारे लोग ठगा गये । विपरीत सिर ऊँचा कर सके नहीं । मर गये ऐसे के ऐसे उसमें ।

कहते हैं कि भगवान इच्छापूर्वक बैठते नहीं । बैठते नहीं इच्छापूर्वक । शरीर बैठ जाए । आहाहा ! श्रीमद् में आता है न ? क्या वह ? 'विचरे उदय प्रयोग ।' आता है न ? 'विचर उदय प्रयोग ।' वह तो छद्मस्थ को भी ऐसा कहा । समझ में आया ? समकिती-ज्ञानी, मुनि, धर्मात्मा वह भी जैसा उदय हो, तदनुसार हुआ करता है, उसके जाननेवाले-देखनेवाले हैं, करनेवाले नहीं । आहाहा ! सम्यग्दृष्टि भी विहार की क्रिया और खाने की क्रिया के कर्ता हैं ही नहीं ।

मुमुक्षु : सही या माने इतना ही ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मानता है । खाते कहाँ हैं ? धूल माने । वह मानता है कि मैं खाता हूँ । वह जड़ की क्रिया है । मुँह में ग्रास आना-जाना, वह तो जड़ पुद्गल की क्रिया

है। मूढ़ होकर मानता है कि मैं खाता हूँ, पीता हूँ, लड्डू खाता हूँ, मौसम्बी। ... धूल में भी नहीं व्यर्थ का। आनन्द का नाथ प्रभु! उसे यह पर का खाने-पीने की क्रिया का कर्ता कहना, वह तो महामिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! यह कहीं पक्ष की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

मुमुक्षु : यह सब वायुकाय की यत्न नहीं करने की और अहिंसा कैसी कहलाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वायु काय का यत्न कौन कर सकता था? वायु काय का यत्न कौन करे? मुनि तो नग्न होते हैं। वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। मुनि जंगल में बसते हैं। समझ में आया? जैनदर्शन कठिन मार्ग है, बापू! वाड़ा बाँधकर बैठे, वह कहीं जैनदर्शन नहीं है। समझ में आया?

इच्छापूर्वक श्री विहारादिक नहीं करते,... देखो! भाषा ऐसी प्रयोग की है! श्रीविहार। भगवान का श्रीविहार.. आहाहा! ऐसा विहार आदि। डग भरना या ऐसे पैर रखना, वह करते नहीं। आहाहा! जैसा अरिहन्त का स्वरूप, वैसा ही आत्मा का स्वरूप है। मात्र पर्याय में हीनता है परन्तु द्रव्य में दृष्टि करने पर उन अरिहन्त जैसा ही आत्मा है। कहो, समझ में आया?

श्री विहारादिक (इच्छापूर्वक भगवान) नहीं करते, क्योंकि “अमनस्काः केवलिनः (केवली मनरहित हैं)” ऐसा शास्त्र का वचन है। तत्त्वार्थसूत्र का यह वचन है। इसलिए उन तीर्थकर-परमदेव को द्रव्यभावस्वरूप चतुर्विध बन्ध... नहीं। भगवान को बन्ध नहीं, ऐसा कहना है न? तीर्थकर परमदेव को द्रव्य अर्थात् कर्म प्रकृति का बन्ध नहीं है और भावबन्ध भी नहीं है। राग का बन्ध भी नहीं है और पर का बन्ध भी नहीं है। आहाहा! (प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध,...) परमाणु में उसका स्वभाव पड़े, उसकी संख्या हो, उसकी अवधि हो और उसमें रस हो, ऐसा बन्ध भगवान को नहीं होता।

और, वह बन्ध (१) किस कारण से होता है तथा (२) किसे होता है ? यह दो प्रश्न। बन्ध भगवान को नहीं होता तो फिर वह बन्ध किस कारण से होता है और किसे होता है? यह दो प्रश्न। (१) बन्ध मोहनीयकर्म के विलास से उत्पन्न होता है। राग से उत्पन्न होता है। समझ में आया? (२) ‘अक्षार्थ’ अर्थात् इन्द्रियार्थ (-इन्द्रिय-विषय); (पाँच) अक्षार्थ सहित हो वह... इन्द्रिय के विषयसहित हो वह। भगवान तो अनीन्द्रिय

है। 'साक्षार्थः' मोहनीय के वश हुए, ... इन्द्रियसहित हो, उस मोहनीय के वश हुए। साक्षार्थ-प्रयोजन (इन्द्रियविषयरूप प्रयोजनवाले) संसारियों को ही बन्ध होता है। लो! समझ में आया ? भगवान को बन्ध नहीं होता।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (४४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— लो! प्रवचनसार का आधार देते हैं।

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मवदेसो य णियदयो तेसिं ।
अरहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं ॥

श्लोकार्थ : उन अरहन्तभगवन्तों को उस काल खड़े रहना, ... भाषा देखो ! उस समय खड़े रहना, वही उनकी पर्याय की क्रिया है। बैठना, विहार और धर्मोपदेश... हिलना और धर्म का उपदेश स्त्रियों के मायाचार की भाँति, ... स्त्री को सहज माया वर्तती है, वैसे ही स्वाभाविक ही- है। भगवान को आहार, बैठना, खड़े रहना, विहार, धर्मोपदेश सहज है। कहो, समझ में आया ? स्त्री को माया और कपट तो सहज हो जाता है। उसे ख्याल भी नहीं होता। उसी प्रकार उसका स्वभाव ही ऐसा है। माया-कपट से स्त्री होकर आये हैं। पूर्व में माया कपट की हो, वह स्त्री होता है। सभी स्त्रियों की बात नहीं है। सामान्य की बात है। भगवान की माता, वे सब ऐसे नहीं होते परन्तु यह तो सामान्य की बात है।

स्त्रियों के मायाचार की भाँति, ... उसे माया, इच्छा आदि कपट सहज साधारण हो जाती है, कहते हैं। इसी प्रकार भगवान को इच्छा बिना आहार-विहार, हिलना-चलना होता है। आहार के भी जो कर्म के रजकण आते हैं, वह भी इच्छा बिना आते हैं। आठ गिने हैं न ? वह यह। नोकर्म। भगवान खड़े रहें, बैठें, विहार, वह स्वाभाविक ही है। प्रयत्न बिना ही-होता है। आहाहा ! भगवान को प्रयत्न नहीं होता कि मैं खड़ा रहूँ। प्रयत्न नहीं कि मैं चलूँ, प्रयत्न नहीं कि मैं बोलूँ, खड़ा रहूँ, यह प्रयत्न बिना होता है।

मुमुक्षु : उदयभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, उदयभाव है। क्षायिकभाव है, खिर जाता है। प्रवचनसार में कहा है न ? यह सब उदयभाव है। पुण्य फला अरहन्ता की व्याख्या यह है। पुण्य के फलरूप से केवली होते हैं, यह व्याख्या नहीं है। परन्तु पूर्व में जो पुण्य बाँधा हो, उसके

कारण हलन-चलन, वाणी, विहार, बैठना-उठना होता है। वह सब पुण्य की क्रिया है, वह हो जाती है। भगवान को हो जाती है। उन्हें कुछ है नहीं। उन्हें तो ज्ञान में वर्तता है कि इस समय में देह चलेगी, इस समय भाषा निकलेगी, इस समय देह खड़ी रहेगी, इस समय चलेगी, यह सब ज्ञान में पहले से है। समझ में आया? केवलज्ञानी का स्वरूप जानना कठिन बात है। इसीलिए तो यहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन को कितने प्रकार से स्थापित किया है, देखो न! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय वहाँ आया और खिर गया। दूसरे समय में दूसरा आया और खिर गया। ऐसा होता है। उदय आकर खिर जाता है। वह क्षायिक का काम करता है। पण्डितजी! आहाहा!

अरे! आत्मा की ऋद्धि अन्तर आनन्द और ज्ञानस्वभाववान प्रभु, उस अन्तर के ध्यान द्वारा जो चीज अन्दर आत्मा में है, उसे एकाग्र द्वारा बाहर परिणतिरूप से पूर्ण दशा हो गयी। ऐसे अनन्त ज्ञान आदि ऋद्धि के धनी परमात्मा को किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। उसे प्रयत्न बिना ही वह सब काम चलता है, ऐसा कहते हैं। उसका प्रयत्न होवे तो यह खड़ा रहना, बैठना, चलना होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो कोई बात! साधारण प्राणी को तो बैठती नहीं। समझ में आया? वे चार कर्म बाकी रहे, वे भी जली हुई रस्सी जैसे हैं। आता है खामणा में आता है, परन्तु उसका अर्थ नहीं समझते। चार कर्म नाश किये, चार कर्म जली हुई रस्सी समान पड़े हैं। जली हुई रस्सी बाँधने में काम नहीं आती। अरे! ऐसे आत्मा की जाति ही जहाँ पूर्ण प्रगट हुई, वहाँ यह प्रकार होता है। ऐसा ही यह भगवान आत्मा, अनन्त आत्माएँ ऐसे ही हैं। समझ में आया? यह परिणति अन्तर में से बाहर निकाले तब साक्षात् परमात्मा होता है। वस्तु से स्वयं आत्मा परमात्मा ही है। परमात्मा न होवे तो पर्याय में परमात्मापना कहाँ से आयेगा? बाहर से आवे, ऐसा है? समझ में आया?

श्लोक-२९२

[अब, इस १७५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(शार्दूलविक्रीडित)

देवेन्द्रासन-कम्पकारण-महत्कैवल्यबोधोदये,
मुक्तिश्रीललनामुखाम्बुजरवेः सद्धर्मरक्षामणेः ।
सर्वं वर्तनमस्ति चेन्न च मनः सर्वं पुराणस्य तत्,
सोऽयं नन्वपरिप्रमेयमहिमा पापाटवीपावकः ॥२९२॥

(वीरछन्द)

इन्द्रासन कम्पन-कारण जब केवलज्ञान उदित होता ।
उन पुराण पुरुषों को सब वर्तन हो किन्तु न मन होता ॥
धर्म हेतु रक्षामणि सम जो मुक्तिमुखाम्बुज को रवि सम ।
पाप-वनों को अग्नि तुल्य जो सचमुच महिमावन्त अगम्य ॥२९२॥

[श्लोकार्थः —] देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान होने के कारणभूत महा केवलज्ञान का उदय होने पर, जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं और सद्धर्म के रक्षामणि हैं, ऐसे पुराण पुरुष को सर्व वर्तन भले हो, तथापि मन सर्वथा नहीं होता; इसलिए वे (केवलज्ञानी पुराण पुरुष) वास्तव में अगम्य महिमावन्त हैं और पापरूपी वन को जलानेवाली अग्नि समान हैं ॥२९२॥

श्लोक - २९२ पर प्रवचन

[अब, इस १७५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

१- रक्षामणि=आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिए पहिना जानेवाला मणि ।
(केवली भगवान सद्धर्म की रक्षा के लिए—असद्धर्म से बचने के लिए—रक्षामणि हैं ।)

देवेन्द्रासन-कम्पकारण-महत्कैवल्यबोधोदये,
मुक्तिश्रीललनामुखाम्बुजरवेः सद्गुर्मरक्षामणेः ।
सर्वं वर्तनमस्ति चेन्न च मनः सर्वं पुराणस्य तत्,
सोऽयं नन्वपरिप्रमेयमहिमा पापाटवीपावकः ॥२९२॥

श्लोकार्थ : देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान होने के कारणभूत महा केवलज्ञान का उदय होने पर,... आहाहा! आत्मा में अन्तर के आनन्द में लीनता होने पर केवलज्ञान होता है। भगवान आत्मा, अपना जो अनन्त ज्ञान-आनन्दादि स्वभाव अन्तर अभी परिपूर्ण पड़ा है, उसमें लीनता करने से, उसकी एकाग्रता साधने से केवलज्ञान होता है। वह केवलज्ञान देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान होने का निमित्त है, कारण है। कहो, समझ में आया? लो! यहाँ केवलज्ञान होवे तो देवों के आसन चलित होते हैं। देवेन्द्र जो इन्द्र आदि हैं, उनके आसन कम्पायमान होने के कारणभूत महा केवलज्ञान का उदय होने पर... लो! केवलज्ञान प्रगट होने पर कम्पायमान होता है। देखो! इसमें निमित्त से आया। है? ऐ... दिलीप! केवलज्ञान हो, तब कम्पायमान होता है वहाँ? क्या हुआ? परन्तु निमित्त है न? हुआ उससे?

मुमुक्षु : निमित्त से कुछ होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता?

मुमुक्षु : आपने तो हमें सिखलाया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो समझ में आया? उससे नहीं होता। परन्तु उस काल में वहाँ होने की पर्याय थी, उसमें यह निमित्त कहने में आता है। ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका?

मुमुक्षु : केवलज्ञानी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो केवलज्ञान हुआ, इसलिए वहाँ कम्पन होता है। वह उसके कारण से होता है। इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। केवलज्ञानी.. है न? केवलज्ञान। यहाँ तो जन्मते हैं, वहाँ (आसन) कम्पायमान होता है। तीर्थंकर

का जीव जहाँ जन्मे, वहाँ देह के आसन कम्पित होते हैं। वह भी उस समय में कम्पित होने की योग्यता में निमित्त कहलाते हैं। निमित्त की सामग्री पूरी मिलती है, जिसे चाहिए हो।

देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान होने के कारणभूत महा केवलज्ञान का उदय... केवलज्ञान का उदय हुआ, तब कम्पन हुआ। यह पहले क्यों नहीं हुआ। यह तो उस समय उसकी होने की क्रिया थी, उसे केवलज्ञान का निमित्त कहने में आता है। ऐसी बात है भाई! वीतरागमार्ग की स्वतन्त्रता। प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतन्त्र है। कोई किसी के कारण से किसी की पर्याय नहीं होती, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। क्या हो? भाई! सुनने मिलता नहीं और यह फिर पड़े हैं, उसमें मानकर जिन्दगी पूरी करते हैं। भव का अभाव का करने का भय (मिला), उसमें भय बढ़ाकर जाते हैं। आहाहा!

जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं... मुक्तिरूपी लक्ष्मी, उसकी परिणति में मुखकमल अर्थात् खिलने का सूर्य है वह तो शुद्धपरिणति के खिलने का कारण है। समझ में आया? **सद्धर्म के रक्षामणि हैं...** लो! पहले भी एक बार आ गया है। २३३ पृष्ठ पर आ गया है। आपत्तियों से अथवा पिशाच इत्यादि से अपनी जाति को बचाने के लिये पहना जानेवाला मणि। ठीक? (केवली भगवान सद्धर्म की रक्षा के लिए— असद्धर्म से बचने के लिए—रक्षामणि हैं।) आहाहा! समझ में आया? २८७ में आ गया है। २८७, रक्षामणि। है नीचे (फुटनोट में)? **सद्धर्म की रक्षा के लिए, रक्षामणि =आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिए पहिना जानेवाला मणि।** उपमा दी है। हों!

यहाँ भी भगवान सद्धर्म के रक्षक हैं। आहाहा! असद्धर्म से बचने के लिये रक्षामणि भगवान को कहा गया है। जो इसे समझे और आश्रय ले, उसे भी सद्धर्म की रक्षा में भगवानमणि—रक्षामणि हैं। आहाहा! स्तवन में एक जगह आता है न! 'मारे माथे सीमन्धरस्वामी अखण्ड हमारी रक्षा करे'। आता है? भगवान रक्षा करने आते होंगे? भगवान अरिहन्त का जो स्वरूप है, ऐसा जिसके ज्ञान में बराबर जँचे, उसे अन्तर का लाभ होता है, उसमें भगवान निमित्त कहने में आते हैं। ऐसा कहते हैं। अपने सद्धर्म का रक्षक है और असद्धर्म से बचने के लिये रक्षामणि। इसी प्रकार स्वयं भी ऐसे हैं और दूसरों के लिये भी वे ऐसे हैं। जिसने अरिहन्त परमात्मा का वास्तविक ऐसा स्वरूप होता है, ऐसा जाना, वह पश्चात् अपने आत्मा को उनके साथ मिलान करे तो उसे सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान होता है तो उसके आत्मा के भी वे रक्षामणि व्यवहार से कहे जाते हैं। निश्चय से स्वयं के रक्षामणि हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ऐसे पुराण पुरुष को... ऐसे भगवान अरिहन्त परमेश्वर पुराण पुरुष। पुराना आत्मा जैसा है, वैसा प्रगट हुआ। ऐसा पुराण पुरुष। **को सर्व वर्तन भले हो...** हिलना, चलना, बोलना, खड़े रहना, उपदेश हो, **तथापि मन सर्वथा नहीं होता;**... उसमें मन सर्वथा नहीं होता। आहाहा! गजब बात आयी। इच्छा नहीं, मन नहीं और चले। अपने आप चले? जड़ उसके अपने आप चलता है।

मुमुक्षु : क्रियावतीशक्ति से...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह क्रियावतीशक्ति है। समझ में आया? यह देह जो चलती है, वह उसकी क्रियावतीशक्ति से चलती है। आत्मा की शक्ति नहीं। आत्मा की प्रेरणा हो, प्रयत्न हो, इसलिए ऐसे चलती है—ऐसा भी नहीं। आहाहा! वह तो जड़ तत्त्व है, अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व की क्रिया अजीव में अजीव के कारण से स्वतन्त्र होती है, आत्मा से नहीं होती। नीचे नहीं होती तो फिर भगवान को क्या कहना? कहते हैं। आहाहा!

मन सर्वथा नहीं होता; इसलिए वे (केवलज्ञानी पुराण पुरुष)... है। वास्तव में **अगम्य महिमावन्त हैं...** उनकी महिमा अगम्य है। मन से और विकल्प से जान नहीं सकते। ध्यान से जान सकते हैं। आहाहा! वैसे तो सब सवेरे उठकर णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं करते हैं। परन्तु अरिहन्त कैसे होते हैं, उनकी पर्याय कैसी होती है? उन्हें इच्छापूर्वक हिलना, चलना नहीं होता, यह अभी वास्तविक स्वरूप है, उसे नहीं जानते तो वह णमो अरिहन्ताणं इसका सच्चा नहीं है। वह तो राग से नमस्कार करता है। समझ में आया?

वास्तव में अगम्य महिमावन्त हैं और पापरूपी वन को जलानेवाली अग्नि समान हैं। केवलज्ञानी परमात्मा को तो पापादि हैं नहीं परन्तु दूसरे जीवों को जो पाप होते हैं, ऐसे केवलज्ञानी परमात्मा का जो यथार्थ ज्ञान करे, उसे पापरूपी अग्नि, जलानेवाला वन। पापरूपी वन को जलाने में भगवान अग्नि समान हैं। आहाहा! समझ में आया? पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों। पुण्य और पाप दोनों वन की लकड़ियाँ हैं। भगवान अरिहन्तदेव का वास्तविक स्वरूप अन्तर जाने, वह आत्मा को जाने और आत्मा को जाने, इससे उसके पुण्य और पाप नाश हो जाते हैं। समझ में आया?

गाथा-१७६

आउस्स खयेण पुणो णिण्णासो होइ सेसपयडीणं ।
पच्छा पावइ सिग्घं लोयगं समय-मेत्तेण ॥१७६॥

आयुषः क्षयेण पुनः निर्नाशो भवति शेषप्रकृतीनाम् ।
पश्चात्प्राप्नोति शीघ्रं लोकाग्रं समय-मात्रेण ॥१७६॥

शुद्धजीवस्य स्वभावगतिप्राप्त्युपायोपन्यासोऽयम् । स्वभावगतिक्रियापरिणतस्य षट्कापक्रमविहीनस्य भगवतः सिद्धक्षेत्राभिमुखस्य ध्यानध्येयध्यातृतत्फलप्राप्तिप्रयोजन-विकल्पशून्येन स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपेण परमशुक्लध्यानेन आयुःकर्मक्षये जाते वेदनीय-नामगोत्राभिधानशेषप्रकृतीनां निर्नाशो भवति । शुद्धनिश्चयनयेन स्वस्वरूपे सहजमहिम्नि लीनोऽपि व्यवहारेण स भगवान् क्षणार्धेन लोकाग्रं प्राप्नोतीति ।

हो आयु क्षय से शेष सब ही कर्म-प्रकृति विनाश रे ।
सत्वर समय में पहुँचते अर्हन्त-प्रभु लोकाग्र रे ॥१७६॥

अन्वयार्थ : [पुनः] फिर (केवली को) [आयुषः क्षयेण] आयु के क्षय से [शेषप्रकृतीनाम्] शेष प्रकृतियों का [निर्नाशः] सम्पूर्ण नाश [भवति] होता है; [पश्चात्] फिर वे [शीघ्रं] शीघ्र [समयमात्रेण] समयमात्र में [लोकाग्रं] लोकाग्र में [प्राप्नोति] पहुँचते हैं ।

टीका : यह, शुद्ध जीव को स्वभावगति की प्राप्ति होने के उपाय का कथन है ।

स्वभावगतिक्रियारूप से परिणत, छह 'अपक्रम' से रहित, सिद्धक्षेत्रसम्मुख भगवान को परम शुक्लध्यान द्वारा—कि जो (शुक्लध्यान) ध्यान-ध्येय-ध्याता सम्बन्धी,

२- संसारी जीव अन्य भव में जाते समय छह-दिशाओं में गमन करता है; उसे 'छह अपक्रम' कहा जाता है ।

उसकी फलप्राप्ति सम्बन्धी तथा उसके प्रयोजन सम्बन्धी विकल्पों से रहित है और निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप है उसके द्वारा—आयुर्कर्म का क्षय होने पर, वेदनीय, नाम और गोत्र नाम की शेष प्रकृतियों का सम्पूर्ण नाश होता है (अर्थात् भगवान को शुक्लध्यान द्वारा आयुर्कर्म का क्षय होने पर शेष तीन कर्मों का नाश भी क्षय होता है और सिद्धक्षेत्र की ओर स्वभावगतिक्रिया होती है)। शुद्धनिश्चयनय से सहजमहिमावाले निज स्वरूप में लीन होने पर भी व्यवहार से वे भगवान अर्ध क्षण में (समयमात्र में) लोकाग्र में पहुँचते हैं।

गाथा - १७६ पर प्रवचन

१७६ (गाथा)

आउस्स ख्रयेण पुणो णिण्णासो होइ सेसपयडीणं ।
पच्छा पावइ सिग्घं लोयगं समय-मेत्तेण ॥१७६॥

अरिहन्त तक का स्वरूप बताया। अब सिद्ध लिये, सिद्ध।

हो आयु क्षय से शेष सब ही कर्म-प्रकृति विनाश रे।
सत्वर समय में पहुँचते अर्हन्त-प्रभु लोकाग्र रे ॥१७६॥

टीका : यह, शुद्ध जीव को स्वभावगति की प्राप्ति होने के उपाय का कथन है। आत्मा यहाँ मोक्ष हुआ। चार कर्म गये। पहले अरिहन्त तक बाकी थे, पश्चात् चार कर्म गये। और शुद्ध सिद्ध की दशा यहाँ प्रगट हुई। सिद्धदशा तो यहाँ ही प्रगट हुई। और यहाँ से ऊपर जाए, उनका अग्र स्थान, वह स्वभाविक गति है। वे स्वभाविक गति से जाते हैं। ६३ पृष्ठ पर वह गति का है। जो छह क्रम से विमुक्त हैं, विमुक्त है। तीसवीं गाथा में है।

भगवान आत्मा अरिहन्त होने के पश्चात्... अरिहन्त की व्याख्या तो की है कि ऐसे होते हैं। अब उन्हें चार कर्म बाकी थे, वे गये। समझ में आया? भगवान महावीर आदि यहाँ विराजते थे, तब तक अरिहन्त थे। अन्त में जब चार कर्म का नाश जिस समय हुआ, तब सिद्ध हुए। तब यहाँ ऊर्ध्वगति हुई। स्वभाव गति है, उसका स्वभाव ऊर्ध्व जाकर लोकाग्र में स्वयं के कारण से रहने का स्वभाव है। समझ में आया?

उस स्वभावगतिक्रियारूप से परिणत, छह अपक्रम से रहित,... ऐसा लेना। छह काय के क्रम से यह निकाल डालना। यह बाद में सुधारा है। छह अपक्रम से रहित... अर्थात् आड़ी-टेढ़ी गति से रहित। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्व, नीचे। ऊर्ध्व, नीचे और चार ये। छह दिशा हैं न? ऊपर, नीचे और चार पूर्व, पश्चिम आदि। उनसे रहित सिद्धक्षेत्रसम्मुख भगवान को परम शुक्लध्यान द्वारा— सिद्धक्षेत्र सन्मुख। लोकाग्र में-लोक के अग्र में सिद्ध विराजमान हैं। अनन्त सिद्ध। अनादि से अनन्त... अनन्त... अनन्त सिद्ध परमात्मा हैं। वे शुक्लध्यान द्वारा सिद्धक्षेत्रसम्मुख भगवान को परम शुक्लध्यान द्वारा— परम शुक्लध्यान। देखो!

कि जो (शुक्लध्यान) ध्यान-ध्येय-ध्याता सम्बन्धी, उसकी फलप्राप्ति सम्बन्धी तथा उसके प्रयोजन सम्बन्धी विकल्पों से रहित है... ऐसा परम शुक्लध्यान अन्त (में होता है।) और निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप है... चार कर्म गये। शुक्लध्यान से अन्दर स्थिर हो गये। उसके द्वारा— आयुर्कर्म का क्षय होने पर,... लो! ठीक! अन्दर का ध्यान केवली को भी चौदहवें गुणस्थान में स्थिरता का ध्यान हुआ, उससे; भगवान को आयुष्यकर्म बाकी था न? उसका क्षय हुआ। महाविदेह में सीमन्धर भगवान अभी विराजते हैं। चार कर्म का नाश हुआ और चार कर्म अभी भगवान को बाकी है। जब मोक्ष होगा, आगामी चौबीसी के जब तेरहवें तीर्थकर होंगे, तब (सीमन्धर भगवान का) मोक्ष होगा, तब सिद्धगति में (जाएँगे)।

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप है उसके द्वारा— आयुर्कर्म का क्षय होने पर, वेदनीय, नाम और गोत्र नाम की शेष प्रकृतियों का सम्पूर्ण नाश होता है... लो! भगवान को चार कर्म का नाश होता है। आहाहा! वे (अर्थात् भगवान को शुक्लध्यान द्वारा आयुर्कर्म का क्षय होने पर शेष तीन कर्मों का नाश भी क्षय होता है और सिद्धक्षेत्र की ओर स्वभावगतिक्रिया होती है)। शुद्धनिश्चयनय से सहजमहिमावाले निज स्वरूप में लीन होने पर भी... आत्मा की पूर्ण दशा में भगवान तो लीन हैं। सिद्ध हो गये। उन्हें कुछ बाकी नहीं है। यहाँ शरीर में रहे, सिद्ध हुए, हों! यहाँ से छूट गया यह सब।

शुद्धनिश्चयनय से सहजमहिमावाले निज स्वरूप में लीन होने पर भी व्यवहार से वे भगवान अर्ध क्षण में... एक समयमात्र। अर्द्धक्षण शब्द प्रयोग किया है। (समयमात्र में) लोकाग्र में पहुँचते हैं। एक आँख बन्द करके खोले, उसमें असंख्य समय (जाते

हैं)। एक समय में लोकाग्र में पहुँचे। सात राजू एक समय में अपनी स्वाभाविक गति से जाते हैं। कोई उसमें कर्म का कारण या अमुक कारण है नहीं। वर्तमान अपना स्वभाव ही ऐसा है। समझ में आया? व्यवहार से वे भगवान अर्ध क्षण में... व्यवहार का अर्थ क्या? कि लोकाग्र में पहुँचते हैं, व्यवहार है। बाकी स्वयं में ही है, यह निश्चय है। लोकाग्र में अर्थात् यहाँ बाहर क्षेत्र हुआ न? वह व्यवहार कहलाता है। बाकी अन्दर में लीन हैं, वह निश्चय है। वह भगवान की गति स्वाभाविक है, ऐसा कहते हैं। यहाँ से गति है, वह स्वाभाविक गति हुई है। समझ में आया? यहाँ गति करते हैं, तब तक उसे विभाव है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? गति तो करते हैं न ऐसे? गति करे, तब तक विभाव है और फिर फिरे तब स्वभाव है। समय तो एक ही है। सूक्ष्म बात है। यहाँ चार कर्म का नाश होकर शुक्लध्यान द्वारा जहाँ सिद्ध हुए, यहाँ पर्याय सिद्ध की प्रगट हुई, वही समय था और उसी समय में वहाँ हैं। समयभेद कहाँ है? आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्ध को एक समय में कितने सब काम होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने सब कहाँ थे? ऐसे जहाँ छूटा, पूर्ण दशा हुई बस, उसी समय यहाँ हुई और उसी समय रास्ते में है, उसी समय वहाँ है। इसीलिए उस एक समय में ऐसा होता है। गति करे तब तक विभाविक कहलाता है, ऐसा नहीं है। इसलिए ऊपर पहले लिया न स्वभावगति। स्वभावगति क्रियारूप परिणत। ऐसा कहा है न? वह तो स्वभावगति अपना स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा? अरिहन्त गमन करते हैं, वह अपनी पर्याय मानो वहाँ वह तो उदय का विभाव है। स्वयं को कहाँ विभाव है? गमन करना, इच्छापना नहीं, अपना प्रयत्न नहीं, वह तो जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : आपने कहाँ चेतन अनुसार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतन अनुसार होता है, वह तो अपना स्वभाव है। चेतन होना वह। वह तो अपने स्वभाव के कारण से है, वह कहीं पर के कारण से नहीं है।

जहाँ आत्मा सिद्ध हुआ और उसका क्षेत्रान्तर हो। यहाँ से देखो न क्षेत्रान्तर हुआ। परन्तु वह तो स्वभाव है। वह तो एक समय है। विभाव नहीं। इसमें भी अभी बहुत गड़बड़ है।

मुमुक्षु : सिद्ध होते हैं और विभाव खड़ा रहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभी गति करते हैं, वहाँ तक विभाव, फिर वहाँ स्वभाव ।

मुमुक्षु : फिर कहाँ है एक ही समय है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-पश्चात् है भी कहाँ ? ऐसे पूर्णानन्द प्रभु जहाँ दशा प्राप्त हुई है, वही समय है । वहाँ, यहाँ और बीच का सर्वत्र एक ही समय है ।

ऐसे भगवान लोकाग्र में पहुँचते हैं, यह व्यवहार हुआ । लोक का अग्र है न ? वहाँ क्षेत्र कहलाये न ? वह क्षेत्र । बाकी है तो स्वयं अपने में । वहाँ भी अपने में है, कहीं बाहर में नहीं । लोकाग्र में है, यह व्यवहार कहने में आता है । अपने स्वरूप के आनन्द में लीन हैं, वह निश्चय है । ऐसा सिद्ध का स्वरूप भी अरहन्त होने के बाद का ऐसा होता है, ऐसा भी यहाँ वर्णन साथ में किया है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)